आजादी के पचास साल – दिशाहीन शिक्षा

❑ प्रो. कृष्ण कुमार

प्रो. कृष्णकुमार भारतीय शिक्षा-जगत की लब्ध-प्रतिष्ठित हस्ती हैं। हाल ही में उन्हें भारत व पाकिस्तान में स्कूली बच्चों के इतिहास-शिक्षण के तुलनात्मक अध्ययन हेतु नेहरू फैलोशिप मिली है। प्रस्तुत आलेख में उन्होंने पिछले पांच दशकों में शिक्षा के प्रति अपनाये गये सरकारी नजरिये की छानबीन की है। यह आलेख गत वर्ष 'टाइम्स ऑफ इंडिया' में छपा था। शिक्षा के प्रति सरकारी सोच पर आलोचनात्मक चिंतन शुरू किया जाये - इस दिशा में यह अनुवाद एक छोटा-सा उपक्रम है।

केन्द्रीय मंत्रिमंडल में गृह, विदेश नीति, वित्त और रक्षा विभाग अधिक सम्मानजनक मंत्रालय रहे हैं। वास्तव में नेहरू द्वारा मौलाना आजाद को इनमें से कोई विभाग न देना कुछ लोगों को उनके कद और प्रतिभा की उपेक्षा लगीथी। स्वयं आजाद की भी यही मत था और उन्होंने भारत के प्रथम शिक्षा मंत्री का पद इस कुंठा के साथ संभाला। विभाजन पहले ही उनका दिल तोड़ चुका था। उन्हें उपलब्ध वित्तीय संसाधन मामूली थे - जबकि उनके आलोचकों की भरमार थी। उनके आलोचकों में हिन्दी क्षेत्र के दिग्गज कांग्रेसी भी शामिल थे, जिनके संस्कृति और शिक्षा को लेकर अपने निश्चित विचार थे। शिक्षाविद् उपराष्ट्रपति डा राधाकृष्णन भी मौलाना के आलोचकों में शामिल थे ।

बुनियादी शिक्षा

लेकिन उस युग में भी अच्छे विचारों और उनके प्रति आदर की कोई कमी न थी। गांधीजी की 'बुनियादी शिक्षा' ने सकारात्मक रूप से ध्यान आकर्षित्त किया। और आधुनिक राज्योंमें यह ुली-फूली । पहली तीनों पंचवर्षीय योजनाओं के दस्तावेजों में 'बुनियादी शिक्षा' पर उत्साहपूर्वक विमर्शकिया गया हे। लेकिन चौथी पंचवर्षीय योजना के प्रारूप और कोठारी आयोग की रिपोर्ट ने इस को बिना किसी फातिहा के दफर कर दिया। ये दोनों ही 1966 में प्रकाशित हुए। लेकिन तब तक भारत वैसे भी एक नये दौर में प्रवेश कर चुका था। जिसमें यांत्रिक समाधानों को विचारों और सामाजिक ऊर्जा पर तरजी दी जाने लगी थी।

स्वतंत्रता के बाद शिक्षा में सुधार के प्रयत्नों में से जो मुख्य विचार उभरे, वे थे विश्वविद्यालयों की स्वायत्तता के विचार ही कुछ समय के लिए जड़ें, तो जमी लेकिन माध्यमिक शिक्षा का आधुनिकीकरण लफ्फाजी तक ही सीमित रहा। राष्ट्रीय शैक्षणिक अनुसंधान एपं प्रशिक्षण परिषद की स्थापना 1961 में शिक्षा में आधुनिक प्रक्रियाओं को बढ़ावा देने के प्राथमिक उद्देश्यों से की गई। हालांकि परिषद में समर्थ लोगों की कमी नहीं रही, फिर भी इसने गांव के स्कूलों के यर्थाथ से तालमेल बिठाने का प्रयास नहीं किया। इसका जोर अमेरिकी नजरों में व्यावसायिक हैसियत बनाये रखने पर रहा। परिषद के अधिकांश संकाय सदस्यों ने अमेरिका से ही प्रशिक्षण प्राप्त किया था।

इन दोनों विकल्पों में कोई वास्तविक विरोध नहीं था। लेकिन उच्च शिक्षा ने कुल मिलाकर पश्चिमी चिंतन धारा को स्वीकार कर लिया। ज्ञान के स्वदेशी स्वरूपों और भारतीय समाज जिन बुनियादी समस्याओं से जूझ रहा है, इन्हें नाम को ही अहमियत दी गयी। जबकि कॉलेज जो वाली एक समूची पीढ़ी को पी.एल. 470 के वित्तीय अनुदाय के साथ मिली अमेरिकी पाठ्यपुस्तकों को निगलना पड़ा। साठवें दशक में, दो युद्धों सूखा और केनेडी के बाद के अमेरिका से खाद्य सहायता पाने की बेइज्जती ने खुद अपनी समस्याओं का समाधान निकालने

के भारत के राष्ट्रीयतावादी आत्मविश्वास को भारी धक्का पहुंचाया। जानसन से और अधिक सहायता मांगने के लिए इन्दिरा गांधी की यात्रा के समय पी.एन. हक्सर ने इन्हें सलाह दी थी कि भारत में अमेरिकी शिक्षा फाउन्डेशन स्थापित करने के लिए अभी प्रतीक्षा करनी चाहिए लेकिन ऐसे प्रयास उच्च शिक्षा शिक्षा की दिशा नहीं बदल सके। कर्ज से दबा भारत और गहरे स्तर पर कुचले जाने के लिए तैयार था।

सातवें दशक के मध्य में जब जे.पी. नायक ने भारतीय शिक्षा में 'समानता, गुणवत्ता और संख्यात्मक विस्तार' को 'मायावी त्रिकोण' के रूप में प्रस्तुत किया तो उन्होंने एक ऐसी चुनौती को सही शब्द दिये थे। जिससे शिक्षा के योजनाकार अर्से से जूझ रहे थे। जैसे की यह योजनाकारों को निजात दिलाने के लिए ही किया गया हो। त्रिकोण की एक मुश्किल पैदा करने वाला कोण 'समानता' नीतियों से गायब होने लग गया। यह वो समय था जब ग्रामीण भारत के अनेक हिस्सों में हरित क्रान्ति के फलस्वरूप ग्रामीण भारत में सामाजिक अन्तर भेद गहरे हो रहे थे। सातवें दशक के अंत में, उच्च शिक्षा में भर्ती में अब तक हो रही वृद्धि धीमी पड़ने लगी थी। ऐसा साफतौर पर स्कूली शिक्षा के स्तर में आयी गिरावट के कारण हुआ। प्राथमिक शिक्षा में स्कूल छोड़ने वाले बच्चों की कथित दर भी आगामी बर्षों में स्थिर बनी रही। पहली कक्षा में नामांकित प्रत्येक 100 बच्चों में से केवल एक तिहाई से ही पांचवी कक्षा उत्तीर्ण करने तक पहुंचने की अपेक्षा की जाती थी। अपने विकसित होने के शुरुआती वर्षों में शिक्षा से निकाल बाहर किये जाने वाले इन बच्चों में अधिकांश भूमिहीन श्रमिकों, सीमांत कृषकों और शहरी झुग्गी बस्तियों में रहने वाले लोगों के बच्चे थे, इनमें भी बालिकाओं का अनुपात बालकों से ज्यादा था।

समाज–संबंधी किसी प्रेरक–विचार या परिकल्पना के बिना शिक्षा–तंत्र एक बाजीगरी से दूसरी में लुढ़कता रहता है। इन बाजीगरियों में नीवनतम 'न्यनूतम अधिगम स्तर' है जिन्हें आठवें दशक में अमेरिका में व्यवहारवादी उद्देश्यों की तर्ज पर पहले चिन्हित किया और फिर त्याग दिया गया था। ऐसा माना जाता है कि ये उद्देश्य तंत्र को अधिक जबावदेह बनायेंगे; विशेष रूप से कार्यक्रम के लिए अनुदान और ऋण देने वाली ऐजेन्सियों के प्रति जो 'ढांचागत विनियोजन' (Strutural adjustment) के जमाने में बहुत सक्रिय हैं।

देश में जनता सरकार के संक्षिप्त शासन प्रयोग के बाद जब इन्दिरा गांधी वापस सत्ता में आईं, तब तक भारतीय राजनीति एक ऐसे युग में प्रवेश कर चुकी थी, जिसमें दीर्घकालिक नियोजन का विचार नागरिक जीवन के सभी क्षेत्रों में पुराना पड़ चुका था जो शिक्षा के क्षेत्र में निहायत जरूरी होता है। एशियाई खेलों का आयोजन और पांच सितारा होटलों की स्थापना तथा विज्ञान व तकनीकी के प्रचार की तड़क-भड़क को अब हताश मध्यवर्ग में गर्व पैदा करने के विश्वसनीय साधनों के रूप में देखा जाने लगा था। ग्रामीण गरीब तबके को भरमाना जारी था। जिस समय राजीव गाँधी ने एक नयी शिक्षा नीति तैयार करने की घोषणा की तो किसी ने भी इस प्रणाली के ढहते आधारों को बचाने के प्रति दिलचस्पी नहीं दिखायी, उनके लिए तेजी से उपलब्धि अर्जित करने के सच्चे झूठे संकेत ही महत्वपूर्ण थे।

केपीटेशन कॉलेज

ग्रामीण प्रतिभाओं को प्रोत्साहित करने के नाम पर नवोदय विद्यालयों की स्थापना को उचित ठहराया गया। केन्द्र सरकार के कर्मचारियों के बच्चों के लिए केन्द्रीय विद्यालयों की एक विशेष उप-प्रणाली काफी पहले स्थापित की जा चुकी थी। अब बड़े किसानों की बारी थी। शहरी मध्यवर्ग पहले ही राज्य सरकारों द्वारा संचालित निजी स्कूलों में भर्ती करा चुका था।

व्यावसायिक शिक्षा के क्षेत्र में केपीटेशन कॉलेज स्थायी रूप से सामने आ गये थे। इस तरह, बदहाल करोड़ों जनता और आत्म-केन्द्रित मध्यवर्ग के बीच भारत का दूसरा विभाजन सम्पन्न हुआ। जब तक इस विभाजन को और मजबूत करने के लिए विश्व बैंक द्वारा निर्देशित आर्थिक सुधार आरंभ किये गये, यह सामाजिक मान्यता हासिल कर चुका था।

जब सामाजिक न्याय सुलभ कराने के लिए मंडल आयोग के हल को एक मात्र प्रभावी हल के रूप में प्रचारित किया गया और उसे व्यापक समर्थन प्राप्त हुआ, यह एकदम स्पष्ट था कि राज्य सब को शिक्षा के समान अवसर प्रदान करने के उद्देश्य में पूर्णत: असफल हो चुका है। लेकिन जब राष्ट्र स्वतंत्रता के 50 वें वर्ष से गुजर रहा है तो शिक्षा का एक और पहलू

अधिक महत्व का हो चला है। शिक्षा विचारधारा के मतारोपण का एक दुष्ट माध्यम बन गयी है। इस संदर्भ में सांप्रदायिक संगठनों द्वारा संचालित प्रणाली से कहीं ज्यादा प्रभावी नजर आती है। निसंदेह इनमें से पहली विद्यालय शृंखला में धार्मिक पृथकतावाद अधिक खुले रूप में सिखाया जाता है, लेकिन यह सामाजिकरण की प्रक्रिया में एक प्रमुख विचार-विशिष्ट वर्ग के 'पब्लिक स्कूलों' सहित सभी विद्यालयों में बन चुका है।

कोई संभावना नहीं

धर्मनिरपेक्ष राष्ट्रवादियों को इस बात का अंदाजा भी नहीं है कि विद्यालयी-शिक्षा ने उन के उद्देश्य के सामने कितना बड़ा संकट खड़ा कर दिया है। भारत और पाकिस्तान के बीच लगातार वैमनस्यपूर्ण संबंधों के चलते भारत और पाकिस्तान के करोड़ों बच्चों का सामाजीकरण साम्प्रदायिक मूल्यों की बिना पर हुआ है जिसे दोनों देशों की सरकारों ने राजनीतिक लाभ लेने की मंशा से प्रच्छन्न बढ़ावा दिया है ऐसी कोई संभावना नजर नहीं आती कि नीति-नियंताओं को शांति को प्रोत्साहित करने में शिक्षा की चिंता हो - जिससे राजनेताओं और नागरिकों की एक नयी पीढ़ी सामने आये।

शिक्षा का दूसरा विचारधारा संबंधी नतीजा यह है कि इसने विध्वंसक विकासवाद के लिए अंधी प्रतिबद्धता बनायी है। शहरी माध्यमिक विद्यालयों के बच्चे सीटियां बजाने लगते हैं जब उनकी कक्षाओं में एक बार बिजली चले जाने के बाद बिजली आती है । मुखर मध्यवर्ग को सतत् बिजली आपूर्ति और अन्य अच्छे जीवन के प्रतीक मुहैय्या कराकर संतुष्ट रखने के लिए राज वृहत पैमाने पर लोगों को अपनी जमीन से उखाड़ता है और दारिद्रय में धकेलता है। इन बच्चों के पास इस त्रासदी को जानने का कोई साधन नहीं है। हमारे विद्यालयों और महाविद्यालयों में शिक्षा का केवल नैतिक आधार ही नहीं कार्मिक आधार भी बुरी तरह क्षतिग्रस्त हो चुका है। उपभोक्तावाद की बर्बर ताकत ने प्राचीन समय से ही ज्ञान से जुड़े सादगी के मूल्य को उससे काट फेंका है। पर उत्तर-उपनिवेशकाल के योजनाकारों को भारत की अपनी मनीषा के पुनरावलोकन के लिए तो वैसे भी कभी वक्त नहीं रहा।

समाज-संबंधी किसी प्रेरक-विचार या परिकल्पना के बिना शिक्षा-तंत्र एक बाजीगरी से दूसरी में लुढ़कता रहता है। इन बाजीगरियों में नीवनतम 'न्यनूतम अधिगम स्तर' है जिन्हें आठवें दशक में अमेरिका में व्यवहारवादी उद्देश्यों की तर्ज पर पहले चिन्हित किया और फिर त्याग दिया गया था। ऐसा माना जाता है कि ये उद्देश्य तंत्र को अधिक जबावदेह बनायेंगे; विशेष रूप से कार्यक्रम के लिए अनुदान और ऋण देने वाली ऐजेन्सियों के प्रति जो 'ढांचागत विनियोजन' (Strutural adjustment) के जमाने में बहुत सक्रिय हैं। विदेशी सहायता से प्राथमिक शिक्षा की नई संस्कृति में बहुत कम के पास यह देखने के लिए अक्ल बची है कि शिक्षक का नित्यक्रम कितना अशक्त करने वाला है। उसका सामाजिक रुतबा और वेतन कितना कम है और सरकारी विद्यालय कहे जाने वाला भौतिक ढांचा किस कदर ध्वस्त हो रहा है। ◆

शिक्षा के लिए विचार

मेरे विचार से शिक्षा एक ऐसा महत्वपूर्ण क्षेत्र है जिससे भारत की 80 करोड़ जनता अपने लिए बेहतर खुशहाली से भरपूर, मानवीय और सृजनशील समाज स्थापित कर सकेगी। ऐसा समाज स्थापित करने हेतु ये बातें बहुत जरूरी हैं कि सही विचार से जनता अवगत रहे। ये सही विचार क्या हैं ? ये विचार ऐसे विचार हों जिनसे भारत की 80 करोड़ जनता की सृजन-शक्ति और क्षमता का दोहन हो।

शंकर गुहा नियोगी